



श्रीहरिकृष्ण "भेमी"

आँखों में ॐ

लेखक

हरिकृष्ण "प्रेमी"

प्रकाशक

कलाधर-किरण-मंडल, लश्कर,
ग्वालियर

सोल एजेंट
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग ।

प्रथमवार एक हजार
मूल्य [१।]

मुद्रक—
सूरजप्रसाद खन्ना,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

प्रकाशक की ओर से—

कलाधर-किरण-मण्डल की संस्थापना के मूल में कतिपय भावुक लेखकों की 'अन्तर्वेदना' और आत्मप्रेरणा काम कर रही है। उन्हीं के सहयोग और उन्हीं के हित-साधन में इस मण्डल का अर्थ और इति है। अतएव, लेखकों ही का आशीर्वाद और उन्हीं की शुभ कामनायें हमें इस कार्य में प्रवृत्त करा रही हैं।

'हृदय-तरंग-माला' इस उत्साह की एक उमंग है; 'प्रेमी' जी की 'आँखों में' उसका प्रथम प्रसार हुआ है। 'मण्डल' को 'प्रेमी' की प्रतिभा का यह प्रथम उपहार प्राप्त हुआ है। पाठकों की सेवा में इस भेट को रखते हुए हमें हृदय से प्रसन्नता हो रही है। यदि उन्हें इससे संतोष हुआ, तो वही हमारे उत्साह का कारण होगा।

लश्कर, ग्वालियर

}

संयोजक—

कलाधर-किरण-मण्डल

कलाधर-किरण-मण्डल

उद्देश्य—

- १ हिन्दी के द्वारा सुन्दर, सरस और सुरुचिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन करना ।
- २ हिन्दी के सत्साहित्य का विविध भाषाओं में रूपान्तर प्रस्तुत कराना ।
- ३ मंडल के सदस्यों के लिए लेखन एवं अध्ययन सम्बन्धी सुविधाएं तथा साधन जुटाने का यथासंभव प्रयत्न करना ।

नियम—

१ सदस्य —

मंडल के उद्देश्य के अनुरूप साहित्य-सृष्टि करने वाले एवं सच्चे हृदय से सहयोग प्रदान करने वाले व्यक्ति इस मंडल के सदस्य हो सकेंगे ।

२ प्रवेश शुल्क —

अ—मंडल के उद्देश्य के अनुरूप, कम से कम ७५ पृष्ठ की पुस्तक का, जिसे मंडल स्विकृत करे, सर्वाधिकार ।

अथवा

आ—कम से कम २००) एक मुश्त नक़द ।

३ प्रबन्ध —

प्रबन्ध का सारा भार मंडल के सदस्यों पर रहेगा और उन्हीं की सम्मति से निर्वाचित मंडल का एक सदस्य संयोजक का कार्य करेगा ।

४ प्रकाशन —

प्रत्येक पुस्तक के प्रकाशन के पहले उस पर मंडल के सदस्यों का अनुकूल बहुमत प्राप्त होना आवश्यक है ।

५ संचालन —

इनके अतिरिक्त कार्य-संचालन के लिए आवश्यक नियमों का विधान मंडल समयानुसार तैयार कर सकेगा ।






उपहार

जिसके हृदय-द्वार पर मैं भिखारी
 के रूप में आया था, आज उसी
 को अपनी "आँखों में" अर्घ
 देते लाज लगती है ! जिसने
 मेरे हृदय को धासे फूलसा फेंक
 दिया, मेरी कोमलता को कुचल
 दिया, पर, पीड़ा की मधुर भीख
 दी, मेरी "आँखों में" उसी की
 स्मृति की अमरता है ! जिसके
 प्रथम अनुभव में आकर्षण था,
 प्रथम दर्शन में लूट, प्रथम
 मिलन में चोरी और विरह
 में मीठापन-मादकता, उसकी
 निष्ठुरता की आँखों में मेरी—
 "आँखों में" अर्पित है !

“प्रेमी”

आँखों में 

किसके अन्तस्तल में भर दूँ
अपनी आँखों का सन्देश ?
किसने इस जग में देखा है
मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

हरिकृष्ण 'प्रेमी'



परिचय

गुना के फ़ान्य-निर्मात वेदनावतार "प्रेमी" और उनकी इस कमनीय कृति का परिचय देने का मीठा भार उठाते हुए मुझे, हर्ष हो रहा है अपने सौभाग्य पर; और, खेद हो रहा है अपनी अयोग्यता पर। यदि कविता की "नीरव भाषा" समालोचक-संसार में भी मान्य होती, तो, शायद मुझे अपनी अक्षमता का यह दृष्ट प्रदर्शन न करना पड़ता। किन्तु, "सर्वः कांतमाग्नीयं पश्यति" के अनुसार, "प्रेमी" को मुझ से बढ़कर कोई परिचायक न मिलने और मुझमें उनका शाग्रह टालने की शक्ति न होने के कारण, मुझे उनकी इस मधुर रचना में अपनी इन पंक्तियों की "मदमल में टाट की गोट" लगाने को बाध्य होना पड़ा।

कविता-कामिनी की सजी-सजाई नटखट रमणी की अपेक्षा भोली-भाली और स्वाभाविक धन-कन्या के रूप में अधिक तन्मयता से देखने वाले कवियों में "प्रेमी" का भी एक स्थान है। ये केवल कविता लिखने समय ही नहीं, छात्रों पढ़ कर कवि रहते हैं और सच्चे कवि रहते हैं। कविता को अपने जीवन का सर्व-व्यापक और स्थायी घंग बना लेने वाले कवियों में, मैं "प्रेमी" को एक अलग स्थान देता हूँ। कौन जानता है, कि, उन्हें, कविता से इतने अभिष्ट होने के कारण ही क्या-क्या न सहना पड़ा है !

मशीनों की अनवरत हृदयहीन “खड़-खड़”, उद्यानों के कृत्रिम कुटीर या प्रासादों की कोमल सुख-शर्यादों में पड़े-पड़े, कल्पना को कोंच कोंच कर, अवहनीय शृङ्गार के भार से कविता का कचूमर निकालने वाले कवि-पुंगव क्या जानें कि, विरह के कोलाहल से दूर निरःशब्द निर्जन में वेदना-निवेदन करने वाले सुकुमार निर्भर के स्वर में स्वर मिला कर रोना कैसा होता है, नीरव निशा के अंधियारे आँचल में सिमक-सिमक कर रह जाने वाले सितारों की थोर थपलक ताकते-ताकते रातें धिता देना किसे कहते हैं; पतझड़ के निष्ठुर पदाघातों से पद-दलित पीलेपन की नीरस निराशा के कर्कश “खर-खर”—स्वर को पत्ते-पत्ते में खोजते फिरने में हृदय का पीड़ा से भर आना क्या होता है, और, समाज के तिरस्कृत अर्धमुकुलित फूलों के सूखे मुखों के मुरझाए उच्छ्वासों को हृदय में चुन-चुन कर भर लेने पर भी शुष्क अधरों पर विरस हास का बरबस अभिनय करने में कितनी वेदना होती है।

हमारे “प्रेमी” के दुर्भाग्य के उपर्युक्त अनेक स्थायी अंग, उन्हें चाहे कवि न बना पाए हों, पर पागल अवश्य बना चुके हैं—पीड़ित अवश्य बना चुके हैं—और कभी का बना चुके हैं।

“प्रेमी” का जन्म वेदना में हुआ है, जीवन वेदना में बीत रहा है और अचसान ? किसी अज्ञात करुणा का यह प्रदुब्ध सागर भविष्यद्-गिरि के गर्भ से धीरे-धीरे निर्भर के रूप में निकल-निकल कर किसी दिन साहित्य-संतार के किसी सूने और सूखे भाग को

अवश्य प्लावित कर देगा, यह कई सरस साहित्यिक श्रष्टियों का आशीर्वाद है ।

देने के लिए "प्रेमी" के पास केवल एक संदेश है, जो उनकी पंक्ति-पंक्ति से—अक्षर-अक्षर से—फूट रहा है । संदेश नया नहीं है । सारा संसार इससे परिचित है । फिर भी, अपरिचित है । अपने ही हृदय की बात जिससे इस सुन्दर रूप में निकले उस हृदय को कौन पीड़ित हृदय प्यार न करेगा ? "प्रेमी" की लोक-प्रियता का रहस्य भी इसी में है !

एक बीस-इक्कीस वर्ष के मादक कवि-हृदय से जितनी आशा की जा सकती है, उससे कहीं अधिक मद, कहीं अधिक रस, कहीं अधिक पीडा, और क्या कहें, कहीं अधिक करुणा "प्रेमी" रसिकों के प्यालों में टाल दिया करते हैं ।

साहित्योपवन के मदान्ध गजों द्वारा यदि यह सरस सुमन खिलते ही कुचल न दिया गया, तो कौन कह सकता है कि इसके काव्य-रस पर, भविष्य में, असंख्य रसिक भौरे न ललचाएँगे ?

यदि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का विशाल हृदय करुणा के आकस्मिक आघात से एक व्यथा-भरे अभिराप के रूप में प्रवाहित होकर अखिल विश्व को प्लावित कर सकता है, तो यह भी संभव नहीं, कि प्रेमी का कोमल हृदय करुणा, उन्माद और वेदना के त्रिशूल को आठ-पहर अन्तरतम के आंचल में पालते हुए भी सहृदयों के हृदयों में एक हलकी-सी टीस उत्पन्न न कर सके ।

जिसके हृदय ने, कभी किसी पीड़ित के धारों पर सहानुभूति की पटी बाँधी है, कभी किसी दुखिया को “दुखिया की आँखों” में देखा है, कभी किसी व्यक्ति की चेदना को “आँसुओं की भाग” में पग है, वह “प्रेमी” के अस्त-व्यस्त उष्ण उच्छ्वासों को उनके अक्षर-अक्षर में अनुभव किए बिना न रहेगा। अस्तु।

“प्रेमी” का वर्तमान जीवन आज से लगभग बीस वर्ष पहले से प्रारंभ होता है। ग्वालियर-राज्य के नागरिक विभव-विलासों की मोहक छटा तरसती ही रह गई और उन्होंने गुना के पारंगत वन-वैभवा को अपने प्रथम रोदन से मुखरित कर दिया। वनदेवी अपने सूखे सुमनों की विलसती मालाओं में मुँह चुपा कर बरसों बाद, एक बार अवरय मुसकाई होगी—अपने उस स्वरूप किन्तु अपूर्व सौभाग्य पर! किन्तु, वह मुसकान शीघ्र ही म्लान हो गई, जब वर्तमान नागरिक शिक्षालयों की नीरस मशीनें निष्ठुर बनकर उस वनवासी को एक बार अपनी कड़ी गोद में खाँच ही लाई—न मानीं। आखिर कब तक तरसती रहनीं! उन्हें भी तो उस खिलौने को कुछ दिन अपना बंदी बना कर रखने की लालसा थी! कई साल यों ही बीते। एक दिन जब आसपासके मायावादी कह ही रहे थे कि, “खूब किया जो तुमने इसको ला पिंजड़े में बन्द किया” चिड़िया चुपचाप अपने पुराने परिचित स्वरुद्र समीर के प्यारे प्रवाह में उसी ओर बह गई। तब से अब तक पिंजड़ा खुला ही पड़ा है।

वेदना-वाद के कँटीले पथ के नवजात पागल पथिक "प्रेमी" को अपने पागलपन के पीछे घर में ही निवासित होना पड़ा। कभी-कभी "पागलपन" को धार करने वाले कुछ लोभी भौरें उन्हें अपनी कृतियों का सार्वजनिक रसास्वादन कराने को भी बाध्य करते रहे। "प्रेमी" ने थनमने हृदय से सब कुछ स्वीकार किया। हृदयवालों के सबे धामह को टाडना तो जैसे उन्होंने सीखा ही नहीं है! इसी का फल है, कि, पत्रकारों की और प्रकाशकों की प्रवीण दृष्टि भी उनपर पड़ गई है। आज उनके सम्मुख भिन्न-भिन्न साहित्यिक आकर्षण भिन्न-भिन्न रूपों में उपस्थित हैं। इनमें यदि कोई सचमुच इनना सात्विक और स्वाभाविक हुआ कि उनके हृदय का सदुपयोग कर सके, तो वह अवश्य ही उन्हें अपनी ओर एक धार खींचकर सदाके लिए खींच लेगा !

गुणों के साथ "प्रेमी" में कई उल्लेखनीय दोष भी हैं, जिनमें से दो तो लोगों को बहुत ही खटकते हैं। एक तो, वे अपनी आर्थिक और शारीरिक उन्नति के विषय में किसी भी स्वजन या गुरुजन का ज़रा भी उपदेश सुनना पसन्द नहीं करते, और दूसरे, वे परले सिरे के लापरवाह हैं। इन दोनों दारुण दोषों ने उनका सांसारिक जीवन जैसा बना रक्खा है, वह उन्हीं के सहने की चीज़ है। सामान्य व्यक्ति तो उसके स्मरण-भात्र से ही विचलित हो जाते हैं; फिर भी, वे अपने उक्त दोषों को कवि जनोचित ही समझते हैं, यह स्वाभाविक ही है।

“प्रेमी” के परिचय का नशा थय कुछ उतार पर था गया है । लेखनी फिर दफने की लालसा से थय उनकी प्रस्तुत पुस्तक का परिचय देने को प्रस्तुत होती है ।

“व्यथित हृदय की पहली माँकी
उर के ये धोड़े उद्गार ।
शेष, सिन्धु-सा छिपा हुआ है
अन्तस्तल में हाहाकार !!”

“प्रेमी” की इन पंक्तियों के अनुसार यह कृति उनके हृदय का केवल आंशिक प्रदर्शन है—सर्वांगीण नहीं ! उनकी विस्तृत जीवन डायरी का यह एक पृष्ठ है—केवल एक पृष्ठ !

सिसकते शीत का वह कैसा अद्भुत कँपित अरुणोदय था, जिसने अकस्मात् आकर “प्रेमी” के दग्ध हृदय में एक अपूर्व आग लगा दी ! धीरे-धीरे, अन्तर का उच्छ्वसित धुआँ वाष्प बन-बनकर आँखों में मँडराने लगा । आँसू टपकने लगे । कविता बनने लगी । छंदों की जंजीरें लेकर पिंगल पहुँच ही न पाया, व्याकरण की बेड़ियाँ उठाकर शब्द-शास्त्र आही न सका, तुकों का जाल लेकर कोप आ ही रहा था, अलंकारों का भार लादे नायिका-भेद दूर ही था कि, ‘आँखों में’ कविता बनकर गुपचुप तैयार हो गई !

“प्रेमी” की कविता में, गति है, यति नहीं । शोभा है, शृङ्गार नहीं । प्यार है, विकार नहीं । भाव है, भाषा नहीं । अनुभूति है,

अभिव्यक्ति नहीं। चोट है, प्रहार नहीं। शिथिलता है, निर्जीवता नहीं। बेहोशी है, नशा नहीं। त्याग है, नीरसता नहीं। क्रम भंग है, रस-भंग नहीं। आकर्षण है, माया नहीं। विस्तार है, आडम्बर नहीं। प्रलाप है, निरर्थकता नहीं। ताप है, अभिशाप नहीं। क्या-क्या है, और क्या-क्या नहीं, यह केवल कल्पना से नहीं, प्रत्यक्ष अनुभव से जाना जा सकता है।

यदि साहित्य के सहृदय रसिक शोतेधोर "प्रेमी" की "थाँखों में" दूबकर उनके अंतस्तल की थाह लेंगे, तो, शायद, वे सहानुभूति का एक गहन-करुण उच्छ्वास छोड़े बिना ऊपर न आ सकेंगे।

किसी अज्ञात विमल विभूति के प्रति उनका उन्माद, प्रेम, स्मृति विरह, उपालंभ, मनुहार, वेदना, करुणा और न जाने क्या-क्या, इस कृति में इतने वेग से उमड़ पड़ता है कि उसमें साहित्य-संसार के सामान्य बंधनों का अनुपस्थित रह जाना असंभव हो जाता है। फिर भी, इस वेग में कुछ कमी है, कुछ अधूरापन है। थाँसुओं के अनंत उन्मत्त उष्ण सागर ढलका चुकने पर भी थाँखों में बहुत कुछ छिपा रह जाता है। इसी अधूरी, अव्यक्त, अस्पष्ट अभिव्यक्ति में ही हमें उनके हृदय की अतुल-अगाध अनुभूति की एक अस्फुट क्लिप्त क्लक पाकर इस समय बरबस संतोष कर लेना पड़ता है। प्रेमी के ये उद्गार हृदय-स्पर्शी होने पर भी तुतले हैं, मीठे होने पर भी विशृङ्खल हैं, विसृत होने पर भी अधूरे हैं। हृदय की यात कई बार पूरी हो-होकर भी

पूरी न होने पाती है, कि, पुस्तक का अंत हो जाता है। अंतिम पंक्ति के अंत में हम “प्रेमी” का एक थूरा विवश उच्छ्वास सुनकर दिल थाम फर रह जाते हैं।

कट्टर उपयोगितावादियों का अनुदार संसार चाहे इस वैज्ञानिक युग में “प्रेमी” के उद्गार इस रूप में “सुन्दर” स्वीकार न करे, पर हृदय वालों का विपुल विस्तार उन्हें, सम्मान न सही, प्यार की दृष्टि से अवश्य देखेगा।

“प्रेमी” उन भावुकों में हैं, जो न तो संसार से इतने ऊँचे उठ जाते हैं कि प्यार को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगेँ और न इतने नीचे गिर जाते हैं कि विकार को प्यार करने लगेँ। उनकी कविता उस निष्कपट सामान्य श्रेणी के भावुक मानवों की स्पष्ट भाषा है, जो हृदय रखते हैं, प्यार करते हैं, कष्ट सहते हैं और रोते हैं। “प्रेमी” की कविता का रंग पानी के रंग के समान है, जो भिन्न भिन्न कोटि के कला पारखियों के भिन्न-भिन्न रंग के हृदय-पात्रों में भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है।

“प्रेमी” की इस कृति में, एक ही से भावों की लगातार लदियाँ खोजने वाले, शृङ्खला बद्ध साहित्य के कट्टर पक्षपाती पाठकों को कुछ निराशा अवश्य होगी। वे इसमें कहीं कहीं पर तो, झुन्द-झुन्द पर भाव-परिवर्तन होते देखेंगे और कभी-कभी पास ही पास दो परस्पर विरोधी विचार। यह विशृङ्खलता “प्रेमी” के उस उन्माद की

घोतक है, जिसे अस्थिरता से अत्यधिक प्रेम है। एक ही से विचारों की लड़ियाँ जोड़ते रहने का प्रयत्न “प्रेमी” या तो करते ही नहीं या कर ही नहीं पाते। उन्हें तो हृदय में जब जो जैसी भावना ज्यों ही उठे, व्यों ही उसे तभी जैसी-की-तैसी अपनी अटपटी भाषा में व्यक्त कर देने का मधुर रोग है।

फलतः इस पुस्तक के सभी छंदों में चमत्कार के चातकों को भी एक ही सा रस नहीं मिलेगा। फिर भी, वे इसके सरल प्रवाह में बहते-बहते बीच-बीच में चौंक पढ़ेंगे—जो चाहने होंगे, वहीं पाकर। चाहे थोड़े ही से क्या न हों, पर इस कंटक-कानन में कुछ सुमन ऐसे भी हैं, जिन की अमर सुगंध एक बार सूंघते ही सदा के लिए सहायता के हृदय में बस जाती है, समालोचना का निर्मम सूक्ष्म चाहे उनके अन्तस्सल को निरंतर फुरेदकर छिन्न-भिन्न ही क्यों न करता रहे।

‘प्रेमी’ को अपनी मौलिकता पर भी कुछ गर्व होना स्वाभाविक ही है। उनकी प्रत्येक बात चाहे जैसी हो—उनकी अपनी होती है। यों तो बहुश्रुत कुशल समालोचक-प्रवर, चाहें तो भगीरथ प्रयत्न करके, बड़े से बड़े आचार्यों की रचनाओं में भी किसी पूर्ववर्ती कवि के भावों से माम्ब दिखला दे सकते हैं, किन्तु, इसका निर्णय करना कभी-कभी कठिन हो जाता है कि कौनसा भाव चुरा कर लाया गया है, कौनसा जानबूझ कर सुन्दर-तर घनाकर अपना लिया गया है और कौनसा अनायास अज्ञान में ही किली से मिल गया है। तथापि, इसमें तो कोई संदेह

नहीं कि इन तीनों में से प्रथम प्रकार कवि को पंगु बनाने वाला एवं अत्यंत घृणित है और हमें हर्ष है कि हमारे “प्रेमी” उससे कोसों दूर हैं और रहेंगे ।

“प्रेमी” की कविना, उपदेशक और कविके अंतर को, ज़रा और स्पष्ट कर देती है ! उपदेशक के हृदय पर एक विशिष्ट उद्देश्य—एक निश्चित आदर्श आठों पहर अपना एकाधिपत्य जमाए रहता है । उसके विविध उद्गारों में उसी की अमरता की अमिट छाप रहती है । उसके उद्गार पीछे चलते हैं और आदर्श आगे ! अथवा, यों कह सकते हैं कि उपदेशक का हृदय ग्रामोफोन की तरह है, जिसके भावी संगीत की पूर्व कल्पना रेकार्ड चढ़ाते ही, कोई भी मर्मज्ञ, बहुत पहले ही से, का ले सकता है । किन्तु, कवि का हृदय उस सरल वीणा की तरह है, जिसमें कोई विशिष्ट स्वर-माला पहले से संचित नहीं रहती ! भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और भावनाओं के अंगुलि-स्पर्श से, उसके तारों से तत्काल भिन्न-भिन्न स्वर निकलते हैं, जिनकी पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती ! ग्रामोफोन में बन्धन है—रूढ़ि है—पिटपेपण्य है, पर, वीणा में स्वतन्त्रता है—नवीनता है—प्रकृत वादक को तात्कालिक कृति दिखलाने की गुंजाइश है ! हम पुस्तक के पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होगा कि इसके कई छन्दों में प्रेम के आदर्शों में परस्पर किञ्चित् अनैक्य सा हो गया है । यदि इसके रचयिता उपदेशक होते तो वे एक विशिष्ट आदर्श से अन्त तक चिमटे रहते, चाहे मेचारी सरलता, स्वाभाविकता और भाव प्रवाह का

दम ही क्यों न घुँटने लगता । पर ये टहरे कवि ! आदर्श और उद्देश्य उनकी कला के पाँड़े-पाँड़े चलते हैं—घागे नहीं, उनके मानस का संगीत भावुकता के असीम हृदय पर सहमा जो विद्युत् रेखा खींच जाता है, आदर्शवादी संसार पाँड़े से उम्मी को निम्नों की स्वर-लिपि में पाँधने का प्रयत्न किया करता है ! ये संसार की रसिकता से भटा के नहीं, स्नेह-प्रसन्न के अधिकारी हैं, क्योंकि ये उम्मे उम्मे आदर्शों के अनुसृत नहीं, हृदय के अनुसृत सन्देश देने हैं । ये उपदेशक की तरह पूर्य नहीं, कवि की तरह प्यारे हैं । उनकी मुक्त धीमा रेखाओं का रुद्रि के पन्धनों से बँधी हुई नहीं है । उसकी स्वच्छन्द स्वर-लहरों जब तक भावनाओं के अनन्त आकाश में गूँजकर खव नहीं हो जाती तब तक, रसिक श्रोताओं को उसके विषय में मगुर जिज्ञासा बनी ही रहती है !

यों तो, संसार के सम्मुख, हृदय के अनिर्वचनीय भावों का प्रकाशन-सौष्टव भी, अस्वाभाविक ही कहा जा सकता है, परन्तु वास्तव में परिश्रम और प्रतिभा—अस्वाभाविकता और स्वाभाविकता के अन्तर का परिष्कार सौन्दर्य नहीं—प्रयत्न ही हो सकता है ! किसी-किसी वनकुसुम में धातों के सुरचित सुसिंचित कृत्रिम कुसुमों से कहीं अधिक सौन्दर्य, कहीं अधिक आकर्षण, कहीं अधिक रस और कहीं अधिक सौरभ होता है । पर क्या हूतने ही से यह अस्वाभाविक मान लिया जाता है ? देखना यह पड़ता है कि उसकी उस शोभा के मूल में प्रयत्नों की विपुलता है या प्रकृति-देवी का प्रेम-प्रसाद ! यह एक सुलभ बत्ती है,

जिम्से किसी भी कवि की कृति की स्वाभाविकता का सफल परीक्षण हो सकता है ! 'प्रेमी' की इस कृति में अतिशयोक्ति, सूक्ति और काव्य-चमत्कार की एकाध झलक पाते ही भड़क उठनेवाले सहृदयों को चाहिए कि वे क्षण भर अपने असहिष्णु हृदय को इसके कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार कर लेने दें । अन्यथा, प्रकृति के रजत-निर्भर की चमक से एकदम भड़क कर उसकी स्वाभाविकता पर, खान खोदकर निकाली जागे वाली चाँदी के आरोप का भार रख देनेवाले उतावले समालोचकों को समझाना कम से कम एक कवि की शक्ति के वाहर हो जायगा । सौभाग्यवश जिन्हें प्रेमी के सरल हृदय से कुछ भी परिचय प्राप्त है, वे खूब जानते हैं कि उनके सामान्य भाव-प्रवाह में भी कितना सौन्दर्य होता है ! फिर यदि कष्ट-साध्य, श्रम से प्राप्त, "सूक्ति"—चाँदी की चमक अनायास और अनाहूत ही उनके प्रकृत काव्य-निर्भर में आ जाती है, तो वे क्या करें ? प्यार की गंगा और चोट की यमुना में यदि दृश्य या अदृश्य रूप में "सूक्ति" की सरस्वती भी आकर मिल जाती है तो इसमें हृदय के संगम का क्या दोष ?

इस नवीन युग में, कई सज्जन, ऐसा प्रतीत होता है मानों, कविता को प्रकांड विद्वत्ता, निग्रह अथवा दर्शनशास्त्र के जटिल रहस्यों का ही प्रतिरूप समझ बैठे हैं । उनमें से कुछ तो कठिन-कठिन शब्दों के अजस्र आडम्बर को ही कविता मानने हैं, कुछ स्वयं स्वाभाविक एवं मौलिक हृदयोद्गारों से सरस साहित्य का भण्डार भरने में असमर्थ होते

हुए भी "अनुभूति ! अनुभूति !" की प्रयत्न पुकार मचाकर ही सरल साहित्यिकों पर रीब जमाना चाहते हैं और कुछ सुन्दर-सुन्दर शब्दों की अनोखी एवं आकर्षक योजना में पिपी हुई निर्धनता को ही उध फोड़ि की आत्माग्निक पहली के रूप में उपस्थित करके कवि कदलाने की इच्छा रखते हैं। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश वेचारे "प्रेमी" इनमें से किसी भी धेरी में नहीं आते। उनका मोला हृदय बेवस वेदना की रूँजी लेकर ही कविता की इस ऊँची हाट में आ निफला है। ये उपर्युक्त भ्रम-माय उपायों से "महामहिम" कदलाने की समता नहीं रखते। प्राकृतिक प्रतिभा की प्रेरणा होने ही ये ऊँचे-ऊँचे शब्दों को चुन-चुनकर लड़ना भूल जाते हैं, आत्म-संयम के नाम पर भावों की चञ्चल मंदाकिनी का संवरण नहीं कर पाते और निष्कपट हृदय की पावन पुष्पक की स्पष्टता को बरबस रहस्य बनाने की चिन्ता भी उनके पश की घात नहीं रह जाती। उनका अनुभव है, कि जिस प्रकार प्रयत्न करके कोई कुछ लिखने में यशस्वी नहीं हो सकता, उसी प्रकार चलाने कोई कुछ न लिखने में भी सफलता नहीं पा सकता। उनके लिए ये कहते हैं, कि लिखने की हार्दिक इच्छा न होने पर जैसे लिखना निरान्त अशक्य है, वैसे ही प्रतिभा की प्रयत्न सृष्टि होने पर न लिखना भी अत्यन्त असम्भव है।

जब मैं "प्रेमी" की कविता पढ़ना हूँ, तो मुझे सत्पण प्रतीत होता है, मानों कोई पागल मरना बड़े योग से बहता जा रहा है। यह अपने कण्ठ-प्रवाह में कभी-कभी अपना इतिहास भी भूल जाता है और कभी-

कभी थपना भविष्य भी। लोगों के हृदय पर बरबस जादू डालने के लिए थपने सरल स्वर में अधिक गम्भीरता, अधिक दार्शनिकता, अधिक रहस्य, अधिक शोभा, अधिक मधु, अधिक मद् और अधिक स्थिरता लाने की चिन्ता में मुँह लटका कर बैठ रहने का उसे ज़रा भी अभ्यास नहीं है। वह केवल बहना जानता है। ऊँची-नीची, टेढ़ी-सीधी, मोटी-पतली, जैसी भी हो उसकी धारा “कल-कल-झल-झल” करती हुई चलती ही जाती है। पास के पेड़, पत्नी, पर्वत, बालू और नदी-नाले ही नहीं, उसे आसपास ही बहते हुए सागर तक का भी ध्यान नहीं रहता, जिसमें उसके जीवन का लय होने वाला है। दर्शक और समालोचक उसे देखा करें, वह उन्हें नहीं देखती। चलती ही जाती है—बस चलती ही जाती है। बहुतों को उसमें आनन्द नहीं आता। सब पूछो तो, ज्ञान-गम्भीर-मुद्रा के आकर्षण को उसमें कुछ है भी नहीं। पर कई पगले ऐसे भी हैं जो उसके चपल वेदना-प्रवाह में जीवन का सार पा जाते हैं। उसकी छोटी-छोटी चञ्चल लहरें उनके हृदय में गुद-गुदी मचा देती हैं। वे यह सोचना ही भूल जाते हैं कि कर्ण की उस सुकुमार चञ्चलता के प्रवाह के नीचे खूब गहरी डुबकी लगाकर बाज़ार में बेच सकने योग्य लावण्य या मोती निकाल सकेंगे, या नहीं। न जाने क्यों इस संसार में, भूलों से ही सही, विधाता ने कुछ ऐसी भी आँखों की सृष्टि कर डाली है, जिन्हें गम्भीर-प्रशान्त महा-समुद्र के गर्भ के कठोर मोती गिनने की अपेक्षा चपल निर्भर की सरल

लहरों गिनने ही में अधिक आनन्द आता है। उनके लिए तो कल्याण ही सबसे बड़ी निधि है—सरलता ही सबसे बड़ा सुख—वेदना ही सब से बड़ा आनन्द !

संसार की अच्छी से अच्छी कविता का आनन्द भी “क्या” की संकुचित फसौटी से उतना अधिक नहीं लिया जा सकता, जितना कि “कैसे” की उदार समीक्षा से। पहली के क्षेत्र में मतभेदों का इतना कोलाहल मचा हुआ है कि उसमें कवि का कोमल स्वर न जाने कहाँ छिप जाता है। शास्त्र में हमारी साहित्यिक असहिष्णुता यहाँ तक बढ़ गई है कि हम किसी को अपनी नई चीज़ लेकर इस ओर आते देखते ही बिना समझे-बूझे भड़क उठते हैं, किन्तु दूसरों का सहारा लेकर ही ईसा का दीवाना तुलसी के सर्वस्व राम पर लट्ट हो सकता है; मुहम्मद का शैदा मीरा के गिरिधर-नागर में तल्लीन हो सकता है। ‘प्रेमी’ की कविता में भी बहुत से रसिक उन्हें अपनी वेदना में इतना तन्मय पाएँगे कि वे यह जानना ही भूल जाएँगे कि वे क्या कह रहे हैं।

इस असीम विश्व में प्रत्येक हृदय की व्याधा का कारण भिन्न हो सकता है, उसका स्वरूप भी भिन्न हो सकता है, पर उसकी अनुभूति का स्पंदन प्रत्येक अन्तर्-तम में और अभिव्यक्ति का स्वर प्रत्येक उद्गार में समान ही पाया जाता है। अतः यदि हम भी प्रेमी के तुलने उद्गारों में विश्व की वेदना, रसिकता तथा सहानुभूति का क्षण भर किंचित

समन्वय पर बैठें, तो क्या कुछ समुचित न होगा ? अस्तु ! इस प्रकार, श्रवकाशाभाववश अन्त के आनन्द की आकांक्षा आरम्भ में ही कर उठने-वाले कोरे कामकाजी पाठकों की उतावली को अमल्य प्रतीक्षा का, समालोचकों को सुधवसर का, प्रेमियों को मीठी पीड़ा का, कोमल हृदयवालों को करुणा का, भावुकों को भावावेश का, मर्मज्ञों को समाधि का, साधकों को आशा और निराशा की आँखमिचौनी का, सहृदयों को गुदगुदी का, कवियों को सहानुभूति का, घायलों को घोट का, अरसिकों को अटपटी उलझन का, भूले भटकों को स्मृति का, पागलों को उन्माद का, मतवालों को मद का और प्यासों को अतृप्ति का अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कराते-कराते दिन में सौ बार हँसने और हजार बार रोनेवाली अन्तर्तम की छिपी हुई कसकों के गोपन की गाँठ खोलते-खोलते, 'प्रेमी' का यह भोला प्रलाप "कई जन्म पूरे हों फिर भी रहूँ अधूरे ही उच्छ्वास"—अपनी इस अद्भुत अभिलाषा को अधूरी ही छोड़ कर सहसा समाप्त हो जाता है। वस !

कवि की कामना है कि विश्व की विविध व्यथाओं से व्यथित विभिन्न व्यक्तियों में अभिन्न आकर्षण से, 'प्रेमी' की पीड़ा का एक-एक कण महाप्रसाद की तरह बँट जाय—तड़प कर लुट जाय।

मकरन्द-अन्द्र,
मुरार, ग्वालियर
दोलिकादाह १९८५

—जगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द"



संकेत

पीछे इस दुस्त्रिया जीवन के
ये पागल पन्ने खोलो,
पहले फलुपित हृदय,
वेदना के निर्मल जल में धो लो ।

आँखों में

आँखों में क्या-क्या है देगें,
आँखों से आँखोंवाले ।
इन आँखों ने बना दिए हैं—
लाखों अन्वे, मतवाले ।

✓ इन पापिन आँखों ने तुमको—
यदि न कभी देखा होता ।
तो, मेरी पृथ्वी किस्मत में—
बुद्ध मुख का खेला होगा ।

विष भी है, पीयूष वही है—
प्रेम, अरे, यह क्या माया ?
अखिल विश्व की क्या !
तुम्हें क्या केवल यह प्रेमी, भाया ?

अन्तरिच से, जल-थल से, क्यों—

सारा प्रेम समेट-समेट—

इस प्रेमी ने तुझ अभिमानी—

प्रियतम को कर डाला भेंट ?

आँखों में छाया है मेरी,

फिस भावी का कटु उपहास ?

अन्तस्तल की प्रति-ध्वनि में है—

फिस निष्ठुर स्वर का आभास ?

आँखों में पहली भाँकी है,

आँखों में पिड़ला सुख है।

आँखों में अबकी भाँकी है,

आँखों में अगला दुख है।

कितने घन के टुकड़े आकर,

भर-भर बरस चले जाते !

इस प्रेमी की भ्रम कुटी की—

अग्नि कभी न बुझा पाते।

कितनी पार मदन, धयनी में,

धयनी मादकता भरता !

कितनी पार फौकिला का स्वर,

हृदय मुदुद-जन का हरता !

स्वयं-जाल ऊषा का कितनी—

पार फैल होता धयमान !

पर मेरे जीवन की सन्ध्या—

मे न हुआ फिर कभी विहान !

धौखों में प्रिय की धौखें हैं,

धौखों में प्रिय की पहचान ।

धौखों में प्रिय की खाली है,

उस खाली में प्रिय का मान ।

धौखों में मद का प्याला है,

प्याले में मतवालापन !

धौखों में मद का उतार है,

उस उतार में रुखापन !

सुख के स्वप्नों का आँखों से—

उतर गया सब नशा अज्ञान !

नाना नाम-रूप रख, थागे—

धूमा करती व्यथा महान !

कितनी मादक सन्ध्याओं—पर

ये उदास आँखें डाली ।

कितनी तत्परता से मैंने—

की इस दुख की रखवाली !

किस आतुरता से है मैंने

आकुलता को अपनाया !

स्वयं सजाई अपने जग पर—

अमर वेदना की छाया !

छिपा रहा था अन्तर में ही

अपनी आहों का इतिहास,

तो भी बरबस निकल पड़े हैं

आज हृदय से ये उच्छ्वास ।

भय है, कहीं न दुख की यर्ग
 गीता कर दे मुख का हास !
 मेष न बन जाएँ जगती की—
 आँखों में मेरे उच्छ्वास !
 सौ-सौ दिनों से गाता है—
 हृदय मदा करुणा के गान !
 कहीं प्रतिध्वनि करे न कम्पित,
 किन्नी कुसुम के कोमल प्राण !
 आँखों में पिघली अतृप्ति है,
 आँखों में प्रियतम का प्यार !
 त्याग, वियोग, विलाप, पिपासा,
 प्राणों की भाकुल मनुहार ।
 आँखों में मैं दीप छिपा कर,
 तुम्हें खोजने जाता हूँ ।
 कहीं फूँककर घुम्ना न दो तुम !
 मन-ही-मन भय खाता हूँ !

आँखों में मेरा शुभ शशि है,
 आँखों में ज्योत्स्ना-में स्नान ।
 आँखों में यह चन्द्र-कडारी,
 आँखों में अंधेर महान !

✓ सारी रात व्यथा, मेरी ही
 तारों में चमचम करती !
 होते ही प्रभात, अन्तर के—
 आँसू फूलों में भरती !

द्विपी हुई थी हास—ज्योति में—
 मेरी ही करुणा काली ।
 हरे रंग से ढकी हुई है,
 जैसे मँहदी में लाली !

आँखों में हे स्वाति-चूँद औ'
 आँखों में ही शशि की कोर ।
 आँखों में ही घातक की रट,
 आँखों में ही अमुध चकोर !

प्राँखों में दीपक की लौ है,
 आँसुओं में है विमल प्रकाश !
 आँसुओं में पनंग का जलना,
 आँसुओं में है ज्योति-विनाश !!
 आँसुओं का कलियों का गिलना,
 आँसुओं पर शलियों का प्यार !—
 आँसुओं में भ्रमरों का मन्दन,
 आँसुओं में फिर सुनी दार !!
 उपरन में किननी कलिकाएँ,
 प्रतिदिन मल ढाली जाती !
 किननी विपदाएँ घम्वर से—
 अचनी पर उतरी आती !!
 आते आते जो किरणें घर—
 घर में स्पर्श लुटानी हैं ।
 जाते-जाते अन्धकार का,
 काला पद चुन जाती हैं !

आँखों में आँखों की पुतली,
 पुतली में पुतलीवाला ।
 आँखों में रुठी आँखें हैं,
 आँखों में जीवन काला !

आँखों में उन्माद हृदय का,
 आँखों में बिगड़ी घड़ियाँ ।
 आँखों में स्मृति के कुसुमों को—
 रूखी-सूखी पंखड़ियाँ !

जर्जर अन्तर को क्या निष्ठुर,
 स्मृति फिर से सीने देगी ?
 वह मीठी अनीति क्या मुझ को,
 अब सुख से जीने देगी ?

नित्य तुम्हारी निष्ठुरता को
 याद करूँगा, रोऊँगा !

स्मृति के अश्रु-सिन्धु में अपनी,
 जीवन-नौका खोऊँगा ।

पर, क्या करुणा के गानों का,
 मम चलता रह सकता है ?
 कब तक कोई जीना दुःख के—
 अंचल में रह सकता है ?
 करुणा के हूने योके को
 सद न सकेंगे कोमल प्राण ।
 पट जावेगा अन्तर्गत, रह—
 जावेगा आधा ही गान !
 आँखों में करुणा का सागर,
 आँखों में विपाद का ज्वार ।
 किसमे मिलनोन्मुख लहरों में—
 मचल रहा है हाहाकार ?
 कितना करुण निराशा—निशिमें—
 विफल विसर्जन जीवन का !
 क्या न कभी जीवन आएगा—
 मेरे उजड़े उपवन का ?

इतने दिन की बेचैनी का—

पाया क्या प्यारा परिणाम ?

पल भर को भी क्या न भरेगा—

कभी हृदय का सूना धाम ?

मेरा जीवन सना हुआ है—

असफलता मुसकाती से ।

नमक भाग्य का लेख, लगा लूँ—

इस अभाव को छाती से ।

आशा की वे तिरछी किरणें—

अब न करेंगी उर में घाव ।

अर्पित है अपूर्णता के—

चरणों पर आज पूर्णता-भाव !!

“वह कोई अपना सपना था”—

कह कर जो बहला लूँगा ।

शून्य गगन के सूनूपन में,

सूना प्रियतम पा लूँगा ।

आँखों में है जीवन-नीका,
 आँखों में उमरी पनवार !
 आँखों में है चगुर गिर्यपा,
 आँखों में है पारावार !
 आँखों में टूटी नीका है,
 आँखों में छूटी पनवार !
 आँखों में रुटा माम्मी है,
 आँखों में नृपान अपार !!
 आँखों में है विन्धु-किनारा,
 आँखों में है सुन्दर द्वीप !
 आँखों में सागर का तल है,
 आँखों में हैं छँड़े मीप !!
 मेरा अभ्युत्थान क्षिपाए—
 या सुख के मूर्तों का अन्त !
 जैसे क्षिपा हुआ रहता है—
 खिलने में फूलों का अन्त !!

आँखों में शुभ ख-राशि है,
आँखों में है जिनका लोभ ।

आँखों में प्रियतम की माया,
माया की छाया में लोभ !!

आँखों में मणियों की माला,

आँखों में आँसू का हार !

आँखों की आँखों में तृष्या,

आँखों में है नदी अपार !!

मछली में सागर तिरता है,

सीपों में है रत्नाकर !

आँखों के आँगन में बस्ती,

कोनों में सूने निर्भर !!

आँखों में मेरी शोभा है,

आँखों में मेरा अभिसार ।

आँखों में है रुदन हृदय का,

आँखों में बिल्वरा शृङ्गार !

आँखों में हैं करुण-सुकारे,
 आँखों में है करुण-कथा !
 आँखों में उनकी अमपन्नता,
 आँखों में है मरण-व्यथा !
 आँखों में उच्छ्वास, अश्रु हैं,
 आँखों में नीरव भाषा !
 आँखों में प्रियतम की हठ है,
 आँखों में रोती आशा !
 भूले-भटके तारे-से तुम,
 घमक उठे मम सने में !
 ओहो ! किननी मादकता थी—
 उन किरणों के छूने में !!
 भर अश्रुति मेरे मानस में,
 दुष्ट न जाने कहाँ विलीन ?
 सतत प्रतीक्षा में रहता हूँ,
 अपलक आँखों से तल्लीन !

धीरे-धीरे भर जाता है,
 नक्षत्रों से नभ सारा ।
 किन्तु, नहीं दिखता है वह,
 सब से न्यारा प्यारा तारा !

नयनों का तप—विफल प्रतीक्षा !

यह बुझता दीपक अथना !!

निष्ठुरता की दया !

सरस भावी का वह अस्थिर सपना !!

सूने स्वप्नों के आँचल में,

क्यों पालूँ प्राणों की प्यास ?

क्यों अभिलाषा को तरसाऊँ,

आशा का कर-कर उपहास ?

आहों को मन्दी कर रखूँ,

नयनों में आँसू घेरूँ ।

यौवन की अभिलाषाओं पर—

पीड़ा का पानी फेरूँ ।

क्या उच्छ्वास, क्रोध, शान्तिता—

भुला सहेगी यह घटना ?

क्या काने जीवन-शट से है—

कभी व्यथा-सैरा हटना ?

हृदय धामने से क्या धमता—

कभी कनेजे का तूकान ?

मन गमभाते से क्या होगा ?

गमभें कैने पंडित प्राण ?

इन करणा की रजन-प्यालियों—

को दुलफाया हास्यों वार !

पर, न कभी खाली हो पाई !

कितने इनमें पारावार !!

आँसुओं में है कण-कथा के—

धमर आँसुओं की भाषा !

कौन दूबकर सुनने आवे—

इन आँसुओं की अभिलाषा ?

समझ लिया है भली भाँति से,

बहरा है सारा संसार !

कौन सुनेगा इस प्रेमी के—

दलित हृदय की करुण-पुकार ?

दानी जग निर्दयता-निधि से—

कहीं न यह भोली भर जाय !

कहीं न उर की पीर जगत् की—

दूषित आँखों से मर जाय !!

कहीं न नीरस जग में फँसकर—

अन्तर-तम की करुण-पुकार—

सब का खेल बने बच्चों-सा,—

खेले उम से सत्र संसार !

मेरा दुख हत्यारे जग का,—

बन जाय न खिलौना-सा !

इस भय से उर की कुँजों में,

छिपा रत्ना मृग-झौना-सा !

धमर धेड़ना अन्तर तम में,
आँखों में अधसूजापन ।

रूखी हँसी खेलती मुख पर,
विरह-व्यथित है भीतर मन !

न तो पूछता ही है कोई,
न मैं यताता अपनी प्यास !
मर मे टोकर राकर कैने,
फरुँ किसी का मैं विश्वास ?

समझ लकेगा क्या कोई भी,
अन्तस्तल की मूक पुकार !
पर्य मिजाता हूँ रो-रोकर,
मिठी में मोती लाचार ।

आँखों में निधन की झोली,
आँखों में पैभव-भँडार !
आँखों में है भेंट किसी की !
और किसी का क्रूर प्रहार !!

प्रेमी की निर्धन भोली में—
 एक प्रेम ही तो था धन !
 वह चाहे कोई ले लेता !
 किया तुम्हें ही वह अर्पण !!
 मेरी आशाओं की हत्या—
 कर डाली तुमने, हा हंत !
 किसे पता था होगा मेरे—
 मधुर स्वप्न का ऐसा अन्त !
 अपने स्वप्नों के चित्रों पर—
 फेर निराशा की कूची,
 भावी के अंचल में लिखता—
 हूँ अपने दुख की सूची !
 जग से आँख चुरा गाता हूँ—
 घायल अन्तस्तल के राग ।
 विगत विभव की छाया में भी—
 लगा चुका चुपके से धाग !!

जीवन की असफलता का ही—

एक सफल अभिनय में हूँ !

परिचय-हीन विरय की मीठी—

पीड़ा का परिचय में हूँ !!

किसी विज्ञान धन के प्रान्तर में—

सूने गौरव की हूँ राह !

बढ़ी-बढ़ी अभिलाषाओं की—

एक सिसफती-सी हूँ चाह !!

वैभव की निर्धनता हूँ मैं,

निर्धनता का वैभव हूँ !

अपयश का मैं गौरव हूँ !

गौरव का भोला शैशव हूँ,

तिरस्कार ही के काले—

अंचल में पला हुआ प्राणी—

सुख से सहता हूँ अपमानों—

की मैं सारी मनमानी !

दुख से छके हुए प्राणों का
थका हुआ कोमल तन है ।
करुणा के चरणों पर अपना
चढ़ा चुका यह जीवन है ।

नयनों की नौकाओं में भर
हृदय—सिंधु से चुन मोती
मेरी पीड़ा अपने धन पर
इनराती—गर्वित होती !

आँखों में है हाट हृदय की
जिसमें है मेरी दुकान ।
देकर अमर प्रेम, अभिलाषा,
पाना अन्तर्-पीर महान ।

शीतल ज्वाला, मीठी पीड़ा,
अमर वेदना, हाहाकार !
इस छोटी सी झोली में—
भर रखते कितने दुख-संसार !!

आँखों में मेरी मद-प्याली,
 प्याली में सकुचानी चाह !
 कितना मादक पी जाने पर—
 प्याली दुकराना है ! चाह !!
 मैंने अपना हृदय सुमन-सा
 पदा दिया तब घरणों पर !
 फेंक दिया उसको अथ तुमने—
 यासे फूलों-सा पथ पर !!
 अरे, मुधा के न्योत, कभी मैं—
 तेरे तट पर था आया !
 अन्तस्तल तक जाकर भी,
 उर प्यासा-का-प्यासा पाया !!
 जय मानिक-मदिरा की प्याली—
 पर था प्रेमी का अधिकार,
 बिना पिष्ट आँखें चढ़ जातीं !
 कीला कैसे, शयाधार !!

हाय, हृदय-कलिका क्या मेरी—

मुरझाने को ही फूली !

कोई करुण कर से मल दे—

इसी लिए मद में मूली !

आँखों में वह स्वर्ग-सृष्टि है,

आँखों में मधु का भंडार !

आँखों में हैं फेर दिनों के !

आँखों में सूना संसार !

उग की लाली निरखूँ,

या, लखूँ प्रतीक्षा-पथ खाड़ी !

संध्या की बुझती आभा,

या, आशा की मुकती डाली !

सुमन चुनूँ उपवन के, या,

में गूँथूँ आँसू की माला !

किसी शान्त धारा में धेँदूँ,

या, पालूँ कोई ज्वाला !

आँखों में अंकित कर रखूँ—

क्या जगती का हास-विलास !

या, आँसू से लिख डालूँ निज—

दुखिया-जीवन का इतिहास !

कोयल की तानों पर मोहित—

हो, अपनी तानें भूलूँ !

या, अपनी सूनी कुटिया में—

इस संचित दुख में झूलूँ !

भोगों का मैं भक्त बनूँ, या,

झुँके स्थाग के घरणों पर !

वार विष्ट सौ-मौ सुख-सागर—

इन आँखों के करणों पर !

मेरी सुधि के प्रथम तार से

मंहृत हुआ करुण-संगीत !

फिर कैसे भर लेता प्रेमी—

हास, विलास, विभव मे शीत ?

दुख की दीवारों का बंदी—

गिरल सका न सुखी जीवन !

सुख के मादक स्वप्नों तक से—

बनी रही मेरी अनयन !

आँखों में प्रियतम की छाया,

छाया में वह शान्ति—निवास !

फिर, उस छाया से निर्व्यासन !

यह क्या ! कहर का उपहास !!

देकर पुनः छीन ली तुमने—

अपनी दिव्य दया की भीष !

दिष्ट दान को फिर हथियाना !

किसमे दी तुमको यह सीख !!

आँखों में सौन्दर्य सृष्टि का,

आँखों में उसका शुचि सार !

आँखों में बन्दी अभिलाषा,

आँखों में संसार असार !

आँखों में पहली आँखें हैं,
 पिड़ली आँखें आँखों में !
 रोती हँ, बोती हँ मोती—
 पहली आँखें आँखों में !!

आँखों में आनन्द पुराना,
 आँखों में वह उमँग, उफ़ान !
 आँखों में है दुःख का डेरा,
 आँखों में उर का तूफ़ान !!

आँखों में वह मधुर मिलन की—
 सुन्दर मतवाली लाली !
 आँखों में यह विरह-निशा है—
 मतवाली, काली, खाली !!

आँखों में घूमा करता है—
 निशि दिन एक यही सपना—
 “यना पराया सा बैठा है—
 कहीं रूठ मेरा अपना” !

वसुधा की सारी करुणा को—

वीणा में भर कर एकांत,—

प्रिय के कानों तक पहुँचाकर,

कितनी धार हुआ उद्भ्रान्त !

आँखों में हैं घाव हृदय के,

है उपचार तुम्हारे पास !

पर तुम उनमें चुभा रहे हो

नयनों का निष्ठुर उपहास !

आँखों में हैं दिल के टुकड़े,

टुकड़ों में आकुल अरमान !

अरमानों में उर की तड़पन,

तड़पन में तूफान अजान !

भोज्या-भाला हृदय किसी का—

होता है किनना निष्ठुर !

तीक्ष्ण कदारी सा शुभता है—

कभी हृदय में शशि सुन्दर !

कोमल कमलों से, मधु से मृदु,
 शिशु से शुचि, सुन्दर, भोले—
 इतने निष्ठुर ! किसी हृदय के—
 भाव भला किसने तोले ?
 किसने देखा पार चित्तिज के—
 अन्धकार या स्वर्ण-प्रभात ?
 किसी हृदय के अन्तरतम का
 कब रहस्य होता है ज्ञात ?
 मय ही अपना धुँधला दीपक—
 लेकर मन्दिर में आण !
 किन्तु, तुम्हारे सत्य रूप को—
 क्या पहचान कभी पाए ?
 किन्तु 'उजियारे' से देखूँ मैं—
 अपनी आँखों का तारा ?
 है प्रसिद्ध यह यात जगत् में—
 'दीप तले ही अंधियारा !'

आँखों में वह मेरा वैभव,
 आँखों में यह सूनी रात !
 लाखों के न रोकते सकती—
 आँखों की दूनी धरसात !
 आँखों में है विकल रागिनी,
 आँखों में है सूक पुकार !
 आँखों में कितनी पीडा है,
 कितना उन में हाहाकार !
 पंकज के उदास मुख को लख,
 पुनः हँसाता है दिनकर !
 मलिन कुमुदिनी फिर रुसफाती,
 हँस उठता है जय निशिकर !!
 उपवन की सूनी डालों पर—
 मँडराता है जय मधुकर;
 खाकर तरस धसन्त दयामय—
 लाता प्यालों में मधु भर !

रात-रात भर रो-रो कर भर देता
 नभ धवनी का थाल !
 उपा, सुनहले झँचले से, था,
 पोंछ-पोंछ देती है गाल !

फिन्तु, सदा व्याकुलता, पीड़ा,
 मधुकर सी पीछे मेरे—

किस मधु की आशा से निशिदिन,
 रहती है मुझको घेरे !

आँखों में पीड़ा का चरमा,
 सब में पीड़ा का ही रंग !

शीतलता के उर में ज्वाला,
 शशि का विपधर का-सा ढंग !

हँसने में करुणा का सोता,
 खिलने में मुरम्माना है !

बिगड़ी घड़ियों की आँखों में—

मुख का दुख मन जाना है !

कितने पागल प्रेमी सुने—
 में बेड़ा करते हैं तान !
 कितनों की हूटी वंशी में
 विह्वल हैं करुणा के गान !

जग के कण-कण से बहना है—

कोई करुणा का संगीत !

कुछ ऐसा लगता है मानों—

जग ही है करुणा का गीत !

सब ही 'सौख्य-भीड़' से उदकर

होते व्यथा-जगन में लीन !

सय का धन्तस्तल दिखता है—

किसी घेदना में तल्लीन ।

मेरे मन की सय दुर्बलता—

जय आँखों में घिरती है,

उथल-पुथल मच जाती उर में,

जाने क्या-क्या करती है !

आँखों में धन, धन में बिजली,
 चमक रही बिजली में पीर !
 दुख की वर्षा सहते सहते,
 प्रेम-गली में, हुआ अधीर !

आँखों में ही प्रेम-गली है,
 किन्तु, गली में तोखे शूल !
 आँखों में पहली आँखों के—
 प्रणय-कुंज के कोमल फूल !
 आँखों में पीड़ा का दर्पण,
 चिरव-श्रयथा की उसमें छाप ।

आँखों में भर रक्वा मैंने—
 जग का पाप, ताप, अभिराग !

आँखों में दुर्दिन की भाषा—
 कहती भ्रम हृदय की पीर !
 हृदय दुःखेगा यदि प्रेमी का—
 क्यों न रहेगा उन से नीर !

नीर यहाते हूँ पत्थर के
 पर्वत काले विकटाकार
 मेरा कोमल धन्तस्तल फिर
 क्यों न यहावे आँसू-धार ?

आँखें क्या छोड़ेंगी करना—

अपनी करुणा का शृंगार !

हृदय बहा सरिता-सा कवि का—

रोक सकेगा क्या संसार !

आँखों में करुणा का सोता,

आँखों में प्रियतम की याद !

आँखों में मतवाली पीडा—

का मतवालापन, उन्माद !

आँखों में करुणा का कवि है,

बरसाता पल-पल पर छन्द,

जिसकी धमर स्वर्ण-लहरी है—

विचर रही जग में स्वच्छन्द !

आँखों में है सुधा-सरोवर,
 आँखों में विष का सागर !
 जाने क्या-क्या भर लाई हैं—
 ये छोटी-छोटी गागर !

आँखों में स्मृतियाँ धटकी हैं—
 लाखों स्थिर ध्रुव तारों-सी !
 आँखों में ध्वनियाँ घाती हैं—
 वीणा की झनकारों-सी !

आज पृथ्वी प्रियतम की स्मृति—
 “किसका, किस पर, क्या अधिकार !”
 हाय, हृदय भोला-सा मेरा—
 पाप ढाणो कहाँ उधार ?
 मत पूछो मुझ से कोई—
 क्या प्रियतम पर मेरा अधिकार !
 जाफ़र मुनो पूर्णिमा के दिन—
 सागर के खंचल उद्गार !

क्या अधिकार चकोर विचारे—

का मुन्दर शशि के ऊपर !

क्यों किरणों आफर करती हैं

नलिनी का शुम्बन भू पर !

जो अधिकार पतंग दोन को

दीपक पर जल मरने का,

हे अधिकार यही प्रेमी को

प्यार तुम्हें ही करने का !

आँखों में यौवन का उपवन,

आँखों में उसका माली !

आँखों में खिलना, फलना है,

आँखों में उपवन खाली !

आँखों में सागर का बढ़ना,

लहरों पर सीपी तिरना ।

सीपी में मोती का बनना,

फिर मिट्टी में जा गिरना !

आँखों में श्रुतिल की आँखें,
 आँखों में भावी चितवन
 वर्तमान भी यहीं खेलता—
 है आँखों में आँसू धन !

आँखों में है आँख-मिचौनी,
 पीड़ाकी-सुखकी भोली !
 कोई छिपे-छिपे भर देता
 दुख से प्रेमी की भोली !

आँखों में ही मौन निमन्त्रण,
 आँखों में नीरव मनुहार !

आँखों में प्रियतम का आना,
 और पहनना आँसू-द्वार !

तुम से-मिलन-कल्पना ने ही
 मेरी नस-नस को कीला !
 आँखों से आँसू भर-भर फर
 रखते धारों को गीला !

आँखों से देखो, आँखों में—
 ये दो सारे भरने हैं!
 तुम्हीं सोच लो, कभी हृदय के—
 हरे घाव क्या भरने हैं?
 आँखों में प्यारे दर्शन हैं,
 अंकित है पहली तस्वीर!
 भले मिटाओ, पर न मिटेगी—
 यह पत्थर की अमिट लकीर!
 निष्ठुरता की रगड़ लगाकर—
 व्यर्थ मिटाने का है यत्न!
 जितनी रगड़ो, उज्ज्वल होगी!
 दौं, चलने दो वही प्रयत्न!
 तोड़-तोड़ कर शत-शत बन्धन,
 लाँच-लाँच कर लाखों कौट!
 मेरा प्यार सदा नव चरणों—
 पर वरषस जावेगा लोट!

ज्यों-ज्यों अधिक-अधिक मचलेगा—

पीड़ित प्राणों का विद्रोह ;

स्यों-स्यों अधिक-अधिक उमड़ेगा

प्रियतम के प्रति पावन मोह !

भागो, क्या भागोगे, निष्ठुर,

पुतली के बन्दी मेरे,

आँखों में ताला देकर मैं,

रखूँगा तुम को घेरे !

अलि, ये कमल नहीं ऐसे हैं,

रस लेकर चल दो चुपचाप !

बन्दी रह, लूटो भी तो कुछ—

साथ-साथ मेरे सन्ताप !

और न समझो यह भी मन में—

“होगा, निश्चय, कभी विहान !

हम चल देंगे,” पर, ऐ प्यारे,

आँखों की निशि कल्प-समान !

मेरे आँसू के धारों से,
 पानी की जंजीरों से,
 काली पुतली के पित्रे में,
 बन्दी हो तुम कीरों से !

अन्तर्-पट पर अंकित है जो,
 हो कैसे आँखों की ओट ?
 तुम्हें कैद रखने को काफ़ी है—
 मेरी आँखों का कोट !
 बहुत भिन्नकते थे तुम मुझ से—
 सेवा करवाने में नाथ !

आँखों में ही थय तो तुम हो !
 सब कुछ है मेरे ही हाथ !

आँखों में निर्मल जल भी है,
 मुक्ता-मणि थी, हृदय-सुमन,
 करुणा की कल-चंठी वीणा,
 सब कुछ है, ये जीवन-धन !

जो कुछ भी है, वह अक्षय है,
 सब पर है मेरा अधिकार !
 नित्य तुम्हें पूजूंगा जी भर !
 कैसी बीती प्राणाधार !!

पर, यह व्यर्थ सान्त्वना मन की,
 आँखों में है, तो क्या है ?
 हाँ, प्रत्यक्ष तुम्हें पाऊँ, तो,
 समझूँ तुम को पाया है ।

आँखों में अंकित है सब कुछ—
 वे अपनी बीती बातें !

निकल गए, हा, कितने मेरे—
 मंगल दिन, मादक रातें !

पापी जीवन की घड़ियों में
 एक महारा रोना है !
 हटे-हूटे मुक्ताब्जों के—
 जल से पलकें धोना है !

रोना मेरा सुख, दुख, आशा,
लिप्ता, उत्कंठा, उन्माद,
स्वर्ग, नरक, कामना, वासना,
धर्म और दर्शन के बाद !

आँखों के बुझते प्रकाश से
सुलगी ज्वाला अन्तर में ।

किस दुर्दिन में आग लगी है—

घर के दीपक से घर में !

रखूँ हिमालय-शैल हृदय पर,

प्रियतम, पीर दवाने को ।

भर लूँ सागर को अन्तर में—

उर की आग बुझाने को !

उलट जायगा शैल हिमालय,

आग लगेगी सागर में ।

व्यर्थ यत्न है, अधिक-अधिक—

धधकेगी ज्वाला अन्तर में !

आँखों में अंकित होगी, प्रिय,
 प्रेमी की हँसती मूरत !
 देखो, क्या शृङ्गार किए हैं—
 अथ मेरी मुरम्भी मूरत !
 आँखों में, ऐ आँखों वाले,
 भर लो प्रेमी की तसबीर ।
 फिर, तुम भले चले ही जाना,
 ढलका पलकों से कुछ नीर !
 सहा न जाता सतत तरसना,—
 नाथ, तुम्हारे प्रेमी से !
 क्या अतृप्ति का पागलपन है,
 पूछो तो मेरे जी से !
 तुम से मिलकर तो, ऐ प्यारे,
 दूनी पीड़ा बढ़ जाती !
 हाँ, यदि, तुम में मिल पाता,
 तो, यह ध्याकुलता मिट पाती !

तुम थौ, मैं जब तक दो-दो हूँ,

तब तक बुझती प्यास नहीं !

दुखिया के "एकांत" प्रेम को—

"दो" पर है विश्वास नहीं !

तुम में मुझे मिला लो, या,

मुझ में ही तुम, आ, मिल जाओ,

खुला हुआ है द्वार हृदय का,

ऐ प्रियतम, आओ, आओ !

किन्तु, नहीं ! क्या कभी दुखीकी—

कुटिया में सुख है आता ?

धीरे-धीरे जोड़ चुका उर—

पीड़ा से अक्षय नाता !

कूक-कूक उठती है कोयल-सी—

प्रियतम की मादक याद !

गूँज-गूँज उठता है मधुकर—

मा मेग पिड़ला उन्माद !

चमक-चमक पड़ते नीते दिन
 तारों-से अन्तर्-धुर में ।
 जल-जल उठता है, थाए दिन,
 ज्वालामुखी व्यथित उर में ।

उमड़-उमड़ आँखें वह चलती—
 हँ बरसाती नाले-सी ।
 जीवन के सब थोर वेदना—
 छा जाती है जाले-सी ।
 प्रेमी के प्यासे प्राणों को, देकर
 पीड़ा की भिन्ना—
 रुठ गए मुँह फेर; हमारे—
 दाता की जैसी इच्छा !

यदि इस पीड़ा में सुख बनकर
 आँखों में बस जाते तुम—
 जीवन-न्यायी करुण—गान में
 मधुर रागिनी गाते तुम,—

तो इस व्यथित अभागे उर में
 एक शान्ति-रेखा होती—
 तो ये मेरे अक्षय्य धाँसू
 बन जाते मानिक-मोती !

किन्तु न आशा के अँचल में
 यह सुन्दर सपना पल जाय !
 कोमल निष्ठुरता न तुम्हारी
 मेरी आँहों में जल जाय !
 क्यों कसकों में तुम्हें बुलाऊँ
 करुणा की मनुहारों से,
 क्यों न अकेला मंथन कर लूँ—
 उर, पीड़ा के तारों से ।
 तुम हो जहाँ, वहाँ से कह दो
 एक धार-बस अंतिम धार—
 “अपनी निष्ठुरता से बढ़कर
 करता हूँ मैं तुम्हें को ध्यार” ।

जीवन के असंख्य शूलों को, समझूँ—

मृदु फूलों का सार

नीरव निशि में यदि सुन पाऊँ

कभी तुम्हारा यह उद्गार !

प्रेम-सहित बेड़ी पहनाओ,

विष दो, मुझ को है स्वीकार।

सत्य प्रेम के पद पर चारूँ

सौ-सौ जीवन सौ-सौ बार !

दुख ही मेरा सुख, निर्जन ही—

मेरा सोने का संसार,

रोना ही मेरा हँसना है

और प्यार ही प्राणाधार !

आँखों में प्रेमी की आशो,—

कोयल, चातक, मोर, चकोर !

प्रणय-कथा से भर दो सत्वर—

अवनि और अग्यर के छोर !

गाते-गाते इसी प्रतीक्षा-पथ पर
 कभी तुम्हारा नाम,
 सोच लिया है, इस जीवन का
 कर दूँगा मैं पूर्ण विराम !

सन्ध्या की झुम्कती आभा में
 झुम्का हृदय का सब संताप,
 छोड़ चमकती तारों-सी स्मृति,
 रवि-सा चल दूँगा चुपचाप !

खुले हुए पिंजड़े में कब तक
 बन्दी रह सकता है कीर ?
 फूटे हुए घड़े में कब तक,
 जीवन-धन, रह सकता नीर ?

आँखों में है व्यथा ;—यदेगी ।

आगे है समाधि मेरी ।

आँखों में आँसू भर-भर कर

याद करोगे फिर मेरी ।

कब तक अपना जीवन बाँधूँ—

आशा के कृश धागे से ?

कैसे अपने दुख को ढालूँ

इन आँखों के आगे से ?

गालों पर सूखे आँसू-सा

इस जग में अब मेरा वास,

कब से मुझ को बुला रहा है

ऊपर वह नीला आकाश ।

जग की सूनी हाट ! न लेगा—

सुख देकर कोई दुख-भार

कब तक दलित-हृदय व्यापारी—

करे वेदना का व्यापार !

भर तो चुका हृदय का प्याला,

अब बुलका ही देने दो !

पे मेरे प्यारे, दुनिया से

मुझे विदा ले लेने दो ।

पीछे से आकर पाओगे

शेष भस्म अरमानों की ।

प्राण, तुम्हारी बाट जोहती,

सजा निराशा प्राणों की !

आँखों में धाँसू भर, उसकी—

ठण्ढी कर देना ज्वाला !

अन्त समय इतनी-सी इच्छा—

रखता है यह मतवाला ।

नहीं शक्ति आँखों में शक्ती,

दिल-डुल कर जो कर लें घात !

देखो, ये मुँदती हैं पलकें,

बह आती है काली रात !

क्यों न प्रथम ही शात हुआ यह,

निष्फल है मेरा रोना !

सूनेपन से भरा हुआ है—

करुणा का कोना-कोना !

किसके अन्तस्तल में भर दूँ—

अपनी आँखों का संदेश ?

किसने इस जग में देखा है—

मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

आह, किसे कैसे जतलाऊँ

अपने जी की जलन अपार ?

किसी शिथिल शीतल शब्दापर

सोया है सारा संसार !

कौन कह रहा है कानों में,

कहूँ तुम्हीं से धारम्भार !

बिना कहे क्या पीर न उर को

सुनते होंगे प्राणाधार !

नाथ, तुम्हारे धन में क्या—

खुलते कुसुमों के कोप नहीं ?

क्या पंखुदियों से धाँसू-सी—

डलका करती भ्रोस नहीं ?

कभी, देखकर उसे, न सोचा—
 होगा क्या तुमने मन में,
 “यों ही आँसू बरसाता
 होगा वह दुखिया निर्जन में !”

अलि से बिबुदे किसी कुसुम की
 कृष्णा - का बिखरा श्रृंगार
 लखकर क्या न हृदय में, प्रियतम,
 आता होगा कभी विचार :—
 “मेरे कारण, अखिल विश्व का—
 अन्तर में भर कर संताप,
 किसी वियोगी की अभिलाषा—
 तरस रही होगी चुपचाप !”

आँखों के आगे, न किसी की—
 टूटी धीणा—टूटी तान !
 ये अनजान, तभी गाते हो—
 दुखी जगत् में सुख के गान !

तभी न करुणा की कारिणी—

अन्तर से भरती दिन रात ।

तभी न पीड़ा की परिभाषा

पुलकित प्राणों को है ज्ञात ।

हो भी यदि उर के कोने में

भूला-भटका करुणा-कण ;

स्रण भर भूल कृपणता अपनी,

मुझको दे दो जीवन-धन !

अपनी व्यथा बनाकर यादल

बरसा दो इस कुटिया पर !

दे दो मेरे ही नयनों में

अपने नयनों के निर्मल !

“दुल-दुल” नर्तन करे नयन में

जगती की संचित पीड़ा !

आँखों वाले इन आँखों में

देखें आँखों की क्रीड़ा !

भूलो, इस प्रेमी ने की हो
 यदि धनजाने में मनुहार !
 बाँध टूट जाने दो उर का
 बहने दो आँसू की धार !
 अमरपेलि-सी बनकर स्मृति
 मेरी आँखों में छाई है !
 अन्तरू का सारा रस पीकर
 देखो अब रँग लाई है !
 अचज़ा है, इसको बहने दो,
 कोने-कोने छाने दो !
 टफ़ जाने दो जिससे सब कुछ,
 केवल स्मृति रह जाने दो !
 गत सुख की छाया ही मुझको
 बिकल बना देती है चाह !
 मरें निगोड़ी घे सुख-घड़ियाँ,
 मरे हृदय की सारी चाह !

दुख, स्वागत, वेदना, ब्यथा, आ !

भर ले मेरा भाव्याकाश !!

दूर रहे दुखिया आँखों से

सुख की छाया का आभास !

सुख-घड़ियों का स्या रहना—

भी तो किनना सुन्दर है !

विकल-वेदना के आँगन में

सोना कितना मृदुतर है !

विरह-निशा की गाढ़ी मदिरा

कितनी मीठी, मादक है !

काली चादर सूनी रातों की

कितनी उन्मादक है !

ज्यों-ज्यों विरह-निशा बढ़ती है,

बढ़ता मेरा प्यार अपार !

जल-थल, अनिल-धनल, कण-कण में

मिलते हो तुम प्राणाधार !

पथर के टुकड़ों में भी तो
 मिलता प्रियतम का आभास !
 उठा हृदय पर रख लेता हूँ
 फरता रहे जगत उपहास !
 आँखों में दुख के बादल हैं,
 रहें निरन्तर, रहने दो !
 बहने दो प्रेमी को निशिदिन
 दुख-सरिता में बहने दो !
 जल हो, थल हो, या कि अतल हो,
 पल भर मिले सहारा,
 जहाँ दूब जाये यह नौका
 वह ही बने किनारा !
 हृदय, उमंग, चाह, अभिलाषा,
 मरती हैं, मर जाने दो !
 आग लगे यौवन में, इसको
 मिट्टी में मिल जाने दो !

मरे तुम्हारा प्रेम प्राण-धन,

उसपर मेरा क्या अधिकार ?

✓ जिसे सिसकना ही प्यारा है,

मत बरसाओ उसपर प्यार !

मत छीनो मेरा सुख छलिया,

दुख ही सुख है, रहने दो !

जीवन की सूनी घड़ियों में

करुण कहानी कहने दो !

अपनी करुणा के बदले में

मत छीनो मेरा उन्माद !

✓ तुमसे कहीं अधिक मीठी है,

नाथ, तुम्हारी मादक याद !

मेरी बेहोशी में, प्यारे,

चुरा न लेना बेहोशी !

सुख की साँस लिया करता है

दुख में दुख का संतोषी !

मेरे अधु-कणों पर ढालो
 मत, तुम आँसू की बूँदें !
 कहीं आँख मेरी खुलते ही
 मेरे अधु आँख मूँदें !

इस मूने पय पर न बिछाओ
 तुम अपने सुख के दाने
 मन ये जाल तुम्हारे सारे
 अब प्रेमी ने पहचाने !

जग का बन्दी हूँ, बन्धन से—
 हिल-मिल गया हृदय का मौन !
 सिसक-सिसक थक गईं उसातें,
 जी की जलन जतावे कौन ?

धो लूँगा अब कभी न जग में
 कुछ भी गवं भरी थोली !
 अब न भरूँगा मैं इन थंधी
 अभिलाषाओं से झोर्छी !

जग की निष्ठुरता के आगे
 नन मस्तक है प्रेमी का;
 बन्दी हूँ अतृप्ति का, किससे
 हाल कहूँ अपने जी का !

धन कुबेर का क्या है मुझको
 क्या है राज्य भुवन भर का !
 कहीं बैठ दो बूंदों में—
 ढलका दूँगा सागर उर का !!

चाह नहीं है अब आँखों की
 आँखों में है ही क्या सार !
 ✓ आँखें मूँद तुम्हें पाता हूँ—
 तम में प्रियतम प्राणाधार !

क्यों जग में रह, व्यर्थ
 प्रतीक्षा-पथ पर दें निशिदिन फेरी !
 आँखों में अनन्त की मिलकर
 हों अनन्त आँखें मेरी !

विगत प्रेम अब पूजा बन कर
स्मृति के मन्दिर में आया !

भेंट चढ़ाने को, प्रेमी का—

भ्रम-हृदय लेकर आया !

लाल करो कितनी भी आँखें,

रुलवाओ, कलपाओ भी !

कुछ भी करो, तुम्हें पूँगा !

पूजन को ठुकराओ भी !!

शयित हृदय की पहली काँकी,

उर के ये थोड़े उद्गार !

शेष, सिन्धु-सा क्षिपा हुआ है—

अन्तस्तल में हाहाकार !!

मूर्धित मदमाता मुख जिसमें—

पक्ष हुआ है आँखें मूँद,

उस पीदा के प्याले से ये

घरघस छलक पक्षी "दो बूँद" !

कब तक मरु में मोती बोऊँ
 करूँ विजन में करुण पुकार ?
 सुख से बिगड़े श्रवण—
 सुनेंगे कैसे उर का हाहाकार ?

जहाँ न थपना ही उर करता
 थपनी सत्ता पर विरवास,
 नभ में सीख-तारिका-जैसा
 इस जग में थप मेरा घास !

✓ हृदयहीन बसते हों जिसमें,
 जिसमें निष्ठुरता का राज,
 उस जग से जाने दो मुझको
 छोड़ धूरी आहें आज !

मिलन-भारग ही में नभ-भू के
 मिट जाने वाला जीवन,
 में हूँ धरिल-जलद-भूंदों से
 एक भलग विपुला जल-क्षण !

करुणा की कुण्डित धीणा की
 मैं हूँ एक अधूर 'तान !
 मिट-मिट कर भी—
 कभी न मिटने वाले हैं मेरे धरमान !
 रहने भी दो, करुण-कया—
 कह-कह कर श्व क्या पाना है ?
 हृदय, चलो अज्ञान लोफ को,
 इस जग से श्व जाना है !
 जहाँ न मुख से कहना पड़ता
 “करता हूँ मैं तुम्हसे प्यार ।”
 जहाँ न जतलाया जाता हो
 अपना एक-मात्र अधिकार !
 मुँह न खोलना पड़े जहाँ पर—
 उर की घात यताने को,
 जहाँ न कण-कण में मिलना हो
 केवल परिचय पाने को !

नीरव नयन हृदय की घातों—
 जहाँ प्रकट कर देते हों,
 जहाँ हृदय से मूल्य हृदय का
 ज्ञात हृदय कर लेते हों !
 केवल एक बार मिलते ही
 हृदय परस्पर मिल जाते,
 जहाँ न सुन्दर मुख घालों का
 हृदय कभी निष्ठुर पाते !
 एक बार अपना खेने पर
 जहाँ न हो रांका-संदेह !
 जहाँ प्रेम पर न्यौदापर हों—
 लाखों जीवन, लाखों देह !
 जहाँ प्रेम-योगी राजा हो
 प्रेम प्रजा का हो जीवन,
 ले जाने दो यहीं मुझे भय
 अपने संपित कल्याण-कण !

मिलन, वियोग एक से ही हैं
 और एक ही हैं परिणाम
 प्रेम-पन्थ के भटके पन्थी
 बहक-बहक करते बदनाम !

मिलन समय के मादक दिन भी
 सपने की सी रातें हैं।
 सुख, दुख, हर्ष, विमर्ष, नित्य की
 जानी-बूझी बातें हैं !
 पीड़ा की बेहोशी में ही
 आता हमको सच्चा होश !
 लुटी हुई झोली में से जप
 हँसने लगता है संतोष !

मधुर-मिलन के स्मृति-चिह्नो तुम,
 कभी न करना मेरी याद !
 है वियोग ही अन्त जगत का,
 मिलन घड़ी भर का उन्माद !

किन्तु, विदा लूँ कैसे तुमसे
 ऐ जीवन-संगिनि पीड़ा !
 हाय, हृदय में कभी न तुमने
 की होती मादक क्रीड़ा !!

अपि अतृप्ति, ऐ रुदन अधूरे,
 उर के धाधे हाहाकार !
 कभी समाप्त न होने वाली
 ऐ मेरी असफल मनुहार !!

अभिलाषा की भस्म भस्म-उर के
 उजड़े-दिलरे शृंगार !
 कैसे तुम्हें छोड़ कर चल दूँ
 कल्याण सागर के उस पार !

सुख-दुख, हँसना-रोना, जिसको
 जीना मरना एक-समान,
 'उसे अधूरे ही प्यारे हैं
 धाशा, अभिलाषा, अरमान'

इच्छा है, उनकी निष्ठुरता—
 अमर रहे, मेरी पीड़ा।
 करते रहें अधूरे आँसू
 आँखों में असफल क्रीड़ा!

खटका करे हृदय में काँटा—
 धाती रहे किसी की याद,
 यही प्रेमियों की इच्छा है,
 यही प्रेम का है उन्माद।

दुख से छुके हुए प्राणों में
 सिसका करे तरसती प्यास!
 कई जन्म पूरे हों फिर भी—
 रहें अधूरे ही—उच्छ्वास!

पाँव पखारे नित प्रियतम के
 पुतली में यह पागल प्यार!
 आँखें सीपी में मोती-सी
 संचित रखें सदा मनुहार!!

शुद्धि-पत्र

परिचय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	३	भौरें	भौरे
५	१९	कवि जनोचित	कवि-जनोचित
६	१०	पृष्ट	पृष्ठ
६	११	कॅपित	कम्पित
६	१३	उच्छ्र्वसित	उच्छ्र्वसित
६	१५	जंजीरे	जंजीरें
७	२	क्रम	क्रम-
७	१०	स्मृति	स्मृति,
८	१३	कला	कला-
८	१७	शृङ्खला बद्ध	शृङ्खला-बद्ध
९	३	हृदय	हृदय
९	९	क्या	क्यों
९	११	निर्भय	निर्मम
९	१४	जैसे	जैसी
११	३	विद्युत् रेखा	विद्युत्-रेखा

१४	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	६	स्नेह-अर्घ्य	स्नेह-अर्घ्य
११	१५	परिणाम .	परिमाण
१२	१५	अजस्र	अजस्र
१४	१७	भूलें	भूल
१५	१०	दूसरों	दूसरी

आईंखों में

१	७	किस्मत	किस्मत
७	६	प्यार !	प्यार
२९	३	अंचल	अंचल
४०	४	वाद	वाद
४१	३	हैं	है
४४	२	शान्त	शान्ति
४९	१२	होगे	होगे
६०	१५	मिलता	मिलना

पृष्ठ ८ पंक्ति ९, पृष्ठ १७ पंक्ति १, पृष्ठ २७ पंक्ति ७, पृष्ठ ४० पंक्ति ६, ११, १६, पृष्ठ ५० पंक्ति १० और पृष्ठ ५१ पंक्ति २ में 'अन्तर' को 'अन्तर्' पढ़िये।

